श्रीहरिः

# ब्रह्मचर्य

हनुमानप्रसाद पोद्दार

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

# ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत ।

( अथर्ववेद )

ब्रह्मचर्य और तपसे देवताओंने मृत्युको जीत लिया ।

जिस देशमें प्रत्येक बालकके लिये ब्रह्मचर्य अनिवार्य था, जिस जातिकी समुन्नतिके चार नियमित आश्रमोंमें ब्रह्मचर्य सबसे पहला आश्रम था, बड़े खेदका विषय है कि उसी देश और उसी ब्रह्मचारियोंकी जातिमें आज ब्रह्मचर्यका अभाव हो गया है । जिस देशके शिशु सिंहोंके साथ खेलते थे, जिस देशके शिशुओंके पदाघातसे पहाड़की चट्टानें चकनाचूर हो जाती थीं, वही वीर्य-प्रधान देश आज निर्वीर्य और सत्त्वहीन हो गया है । आज देशके लाखों बालक ब्रह्मचर्यके आचरणसे भ्रष्ट होकर युवावस्था आनेके पूर्व ही अपक्व वीर्यका नाश कर सदाके लिये बुद्धि, बल, तेज और उत्साहसे हाथ धो बैठते हैं । लाखों युवक नाना प्रकारकी दुर्व्याधियों-से पीड़ित हैं और लाखों अपने माता-पिता और निराधार युवती पत्नीको रुलाकर मृत्युके अधीन हो रहे हैं । संयम, नियम, साधन, सुख और मनुष्यत्वका तो भीषण ह्रास हो रहा है । इस दुर्दशाग्रस्त देशकी रक्षा ब्रह्मचर्यकी पुनः प्रतिष्ठासे ही हो सकती है । इसीलिये

इस विषयपर शास्त्र, सत्पुरुषोंके वाक्य और अपने अनुभवके आधार-पर कुछ लिखनेका विचार किया गया है।

## हमारे जीवनका लक्ष्य और उसका साधन

प्राचीन ऋषि-मुनियोंने सुखके अन्वेषणमें प्रयत्न करते हुए बड़े अनुभवसे यह सिद्धान्त निश्चित किया कि नित्यसुखकी प्राप्ति केवल एक परमात्माको प्राप्त कर लेनेमें है, यही मनुष्य-जीवनका चरम लक्ष्य है, जबतक मनुष्य जगत्की सारी अनेकतामें एक व्यापक विभुको उपलब्ध नहीं करता तबतक उसके दुःखोंकी आत्यन्तिक निवृत्ति नहीं होती। अतएव मनुष्यको चाहिये कि वह उस एक नित्य शुद्ध, बुद्ध, सच्चिदानन्दको प्राप्त करे और इसीलिये जीवको भगवत्कृपासे यह देवदुर्लभ मानव-देह प्राप्त हुई है। परन्तु उसकी सुगमतापूर्वक प्राप्ति कैसे हो, इसीलिये मनीषियोंने चार आश्रमोंका विधान किया और उनमें ऐसा क्रम रक्खा कि जिससे संसारक्षेत्रमें भी किसी प्रकारकी बाधा न आवे और मनुष्य क्रमशः मुक्तिकी ओर भी दृढ़ताके साथ अग्रसर होता जाय। आरम्भसे ही ऐसी व्यवस्था की गयी कि जिसमें प्रत्येक आर्य-बालकके हृदयमें ब्रह्मप्राप्तिका लक्ष्य स्थिर हो जाय और संयम-नियमपूर्वक रहकर वह उसीके उपयोगी सर्व प्रकारकी शिक्षा प्राप्त कर सके। इसीलिये पहले आश्रमका नाम हुआ 'ब्रह्मचर्य'। जब इस आश्रमकी सारी क्रियाओंको पूर्ण कर वह तेजस्वी युवक ब्रह्मचर्यकी कठिन परीक्षामें उत्तीर्ण हो जाता था, तब उसे दूसरे महान् दायित्वपूर्ण आश्रम 'गृहस्थ' में प्रवेश करनेका अधिकार प्राप्त होता था और वहाँ भी उसे ब्रह्मकी प्राप्तिके लक्ष्यको सदा ध्यानमें रखते हुए विशाल हृदय होकर अपना प्रत्येक धर्मा-

नुमोदित क्रिया उसी ब्रह्मकी प्राप्तिके लिये भगवदर्पण-बुद्धिसे सम्पन्न करनी पड़ती थी। जब वह गृहस्थके सारे कामोंको कर चुकता तब उसे तीसरे आश्रम 'वानप्रस्थ' में प्रवेश करना पड़ता और वहाँ सम्यक् प्रकारसे त्यागकी तैयारी की जाती और जब पूरी तैयारी हो चुकती तब चतुर्थाश्रम 'संन्यास' की दीक्षा ग्रहणकर मनुष्य देहाभिमान-सहित बाह्य वस्तुओंका भी सर्वथा परित्याग कर परमात्मामें लीन हो जाता। सौ वर्षकी आयुके हिसाबसे यह नियम था कि पहले चौबीस सालतक मनुष्य ब्रह्मचर्यका पालन करे, पचीससे पचासतक गृहस्थ-में रहे, पचास पूरे होते ही दम्पति अरण्यवासी होकर वानप्रस्थाश्रम-का सेवन करे और पचहत्तरवें वर्षसे जीवनके शेष मुहूर्ततक संन्यासाश्रममें रहे। लोग कह सकते हैं कि 'यह व्यवस्था तो सौ वर्षकी आयुके कालमें थी, इस समय यह क्योंकर हो सकती है?' परन्तु वे भूलते हैं। यदि शास्त्रके व्यवस्थानुसार मनुष्य चौबीस सालतक अखण्ड ब्रह्मचर्यका सेवन करे तो अब भी सौ वर्षकी आयुका प्राप्त होना कोई बड़ी बात नहीं है। आयु घटनेका कारण तो ब्रह्मचर्यका नाश ही है। जब देशमें ब्रह्मचर्यका पूर्ण प्रचार था, तब यहाँ न तो इतनी व्याधियाँ थीं और न युवावस्थामें प्रायः कोई मरता ही था। परन्तु आजकी दशा उससे सर्वथा विपरीत है। हमने जीवनके मूल ब्रह्मचर्यको छोड़ दिया, इसीसे हमारी ऐसी दुरवस्था हो गयी। यह स्मरण रखना चाहिये कि जबतक हमारे देशमें ब्रह्मचर्यकी पुनः प्रतिष्ठा नहीं होती, तबतक हमारा उत्थान होना बड़ा ही कठिन है। कच्ची नींवपर इमारत नहीं उठ सकती। यदि उठा दी जाती है तो वह इतनी कमजोर होती है

कि जरा-से धक्केसे ही गिर पड़ती है। इसी प्रकार ब्रह्मचर्यके बिना जीवन नहीं टिक सकता; यदि कहीं कुछ रहता है तो वह दुःखसे भरा हुआ रहता है, सो भी स्वल्प कालके लिये ही। यही कारण है कि आज हमारी इतनी दुर्दशा है।

## वीर्यधारण ही ब्रह्मचर्य है

शरीरमें ओजस् धातुका होना ही जीवनका कारण है। वाग्भट्ट कहते हैं—

**ओजश्च तेजो धातूनां शुक्रान्तानां परं स्मृतम्।**
**हृदयस्थमपि व्यापि देहस्थितिनिबन्धनम्॥**
**यस्य प्रवृद्धौ देहस्य तुष्टिपुष्टिबलोदयाः।**
**यन्नाशे नियतो नाशो यस्मिंस्तिष्ठति जीवनम्॥**
**निष्पाद्यन्ते यतो भावा विविधा देहसंश्रयाः।**
**उत्साहप्रतिभाधैर्यलावण्यसुकुमारताः॥**

'रससे लेकर वीर्यतक सातों धातुओंका जो तेज है उसे ओजस् कहते हैं। ओजस् प्रधानतया हृदयमें रहता है, पर वह समस्त शरीर-में व्याप्त है। ओजस्की वृद्धिसे ही तुष्टि, पुष्टि और बलकी उत्पत्ति होती है। ओजस्के नाशसे ही मृत्यु होती है। यह ओजस्-पदार्थ ही जीवनका आधार है; इसीसे उत्साह, प्रतिभा, धैर्य, लावण्य और सुकुमारताकी प्राप्ति होती है।' यह ओजस् कहाँसे आता है? महर्षि सुश्रुत कहते हैं—

**रसादीनां शुक्रान्तानां धातूनां यत्परं तेजस्तत् खल्वोजस्तदेव बलमिति।**

'रससे शुक्रतक सातों धातुओंके परम तेज भावको ओजस्

कहते हैं, यही बल है ।' यह ओजस् कैसा है और कहाँ रहता है? शार्ङ्गधरका वचन है—

> ओजः सर्वशरीरस्थं स्निग्धं शीतं स्थिरं सितम् ।
> सोमात्मकं शरीरस्य बलपुष्टिकरं मतम् ॥

'ओजस् सारे शरीरमें रहता है । यह स्निग्ध, शीतल, स्थिर, श्वेतवर्ण, सोमात्मक और शरीरके लिये बल तथा पुष्टिका देनेवाला है ।'

इससे सिद्ध हो गया कि इस ओजस्की उत्पत्ति वीर्यसे होती है । अतएव वीर्य ही जीवनधारणका प्रधान उपादान है, यही जीवनका प्रधान अवलम्बन है । अब यह जानना चाहिये कि वीर्य क्या है और उसकी उत्पत्ति कैसे होती है? आयुर्वेदके अनुसार शरीरमें सप्त धातुओंका रहना आवश्यक है, ये पदार्थ मनुष्य जीवनको धारण करते हैं, इसीसे इन्हें धातु कहते हैं ।

> एते सप्त स्वयं स्थित्वा देहं दधति यन्नृणाम् ।
> रसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः ॥

'रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र ( वीर्य )—ये सात पदार्थ स्वयं स्थित रहकर मनुष्योंकी देहको धारण करते हैं ।' इसीसे इनका नाम धातु है, मनुष्य जो कुछ भी खाता-पीता, शरीरपर लगाता या सूँघता है वह शरीरमें जाकर सबसे पहले रसकी उत्पत्ति करता है और उसीसे क्रमशः अन्य धातुएँ बनती हैं ।

> रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रजायते ।
> मेदसोऽस्थि ततो मज्जा मज्जायाः शुक्रसम्भवः ॥

भोजनका सबसे पहले रस बनता है; रससे रुधिर, रुधिरसे

मांस, मांससे मेद, मेदसे अस्थि, अस्थिसे मज्जा और मज्जासे सातवाँ सबका सार पदार्थ 'वीर्य' बनता है ( यही वीर्य ओजस्‌रूपी महान् तेज बनकर सम्पूर्ण शरीरमें चमकने लगता है )।

एक धातुके पचकर दूसरी धातु बननेमें पाँच दिन लगते हैं। सार पदार्थ तो शरीरमें रह जाता है और पाचनकी प्रत्येक क्रियामें बचा हुआ कूड़ा-कचरा, मल, मूत्र, पसीना, मैल, नाखून और दाढ़ी आदिके बालोंके रूपमें बाहर निकल जाता है। वीर्य बनते ही उसकी पाचनक्रिया रुक जाती है और वह सार पदार्थ ओजस्‌के रूपमें शरीरमें स्थित रहता है। इस प्रकार रससे लेकर वीर्य बननेमें प्रत्येक धातुमें पाँच दिनके हिसाबसे छः धातुओंके पाचनमें तीस दिन लगते हैं। आजके खाये हुए पदार्थका तीसवें दिन वीर्य बनता है। पक्के चालीस सेर भोजनसे एक सेर रक्त बनता है और उस एक सेर रुधिरसे दो तोला वीर्य बनता है। प्रतिदिन पक्का एक सेर खानेवाला मनुष्य भी एक महीनेमें तीस सेर ही पदार्थ खाता है। उपर्युक्त हिसाबसे तीस सेर खूराकसे एक महीनेमें डेढ़ तोला वीर्य बनता है, यह महीनेभरकी कमाई है। एक बारके स्त्री-सहवासमें डेढ़ तोलेसे कम वीर्य नहीं जाता। अब विचार करना चाहिये कि जो महीनेभरकी कमाई एक क्षणमें खो देता है और उसे प्रतिदिन इसी प्रकार खोना चाहता है, उसका दिवाला निकलते क्या देर लगती है ? शास्त्रोंमें कहा है—

**शुक्रं सौम्यं सितं स्निग्धं बलपुष्टिकरं स्मृतम् ।**
**गर्भबीजं वपुःसारो जीवनाश्रय उत्तम ॥**

'वीर्य, सौम्य, श्वेत, स्निग्ध, बल और पुष्टिकारक, गर्भका

बीज, शरीरका श्रेष्ठ सार और जीवनका प्रधान आश्रय है।' यह—

**यथा पयसि सर्पिस्तु गुडश्चेक्षुरसे यथा।**
**एवं हि सकले काये शुक्रं तिष्ठति देहिनाम्॥**

—सबके शरीरमें उसी प्रकारसे व्यापक है जैसे दूधमें घी और ईखके रसमें गुड़ व्यापक रहता है।

इसीलिये जैसे दूधमेंसे मक्खन निकालनेमें दूधको मथना और ईखमेंसे गुड़ निकालनेमें ईखको निचोड़ना पड़ता है वैसे ही एक बूँद वीर्यको निकालनेमें सारे शरीरको मथना या निचोड़ डालना पड़ता है। जैसे घी निकालनेके बाद दूध सारहीन, निस्तेज और ईखका दण्ड खोखला और चूर-चूर हो जाता है वैसे ही वीर्यके निकलनेसे शरीर भी सारहीन, निस्तेज, खोखला और चूर-चूर हो जाता है। शरीरकी तमाम नाड़ियाँ ढीली पड़ जाती हैं और प्रत्येक अवयवमें उदासी छा जाती है। वीर्यके पतनमें ही मनुष्यका पतन है और वीर्यके धारणमें ही मनुष्यका जीवन है। 'वीर्यधारणको ही ब्रह्मचर्य कहते हैं'—

**'वीर्यधारणं ब्रह्मचर्यम्'**

शिवसंहितामें कहा है—

**मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात्।**
**तस्मादतिप्रयत्नेन कुरुते बिन्दुधारणम्॥**

'बिन्दुपातसे ही मृत्यु है और इस बिन्दुके धारणमें ही जीवन है, अतएव अति प्रयत्नपूर्वक बिन्दु धारण करना चाहिये।' भगवान्-शिवजी इसी ( बिन्दुधारण ) ब्रह्मचर्यके प्रतापसे इतने प्रभाव-सम्पन्न हैं जो हलाहल विषको पीकर भी स्वस्थ रह सके। यह

सब माहात्म्य कामदेवपर विजय करनेका ही है। भगवान् शिव स्वयं कहते हैं—

**सिद्धे बिन्दौ महारत्ने किं न सिद्ध्यति भूतले ।**
**यस्य प्रसादान्महिमा ममाप्येतादृशोऽभवत् ॥**

'जिसके प्रभावसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें मेरी ऐसी महिमा हुई है उस ( वीर्य ) बिन्दुके धारणसे जगत्में कौन-सा कार्य ऐसा है जो सिद्ध नहीं हो सकता ?'

भक्तराज हनूमान् और पितामह भीष्मके ब्रह्मचर्यका प्रताप जगत्प्रसिद्ध है। वास्तवमें यह सर्वथा सत्य बात है कि ब्रह्मचर्य ही सारे पुरुषार्थोंका मूल है। इससे मनुष्य सदा नीरोग और सुखी रहता है, इसीसे अकाल, जरा और मृत्युसे रक्षा होती है। इसीसे हृष्ट-पुष्ट-बलिष्ठ और धर्मपरायण सन्तान उत्पन्न होती है, इसीसे मनुष्य दीर्घजीवी, श्रुतिसम्पन्न, सत्यवादी, जितेन्द्रिय और धर्मनिष्ठ होता है, इसीसे भजन और ध्यानकी योग्यता प्राप्त होती है, इसीसे योगके साधनमें रुचि और सिद्धि प्राप्त होती है, इसीसे मनुष्य निर्भय और विनम्र होकर जगत्की सेवा कर सकता है और इसीके बलसे अन्तमें परमात्माको भी प्राप्त कर सकता है। यही सर्वप्रथम परम साधन है। प्रजापति ब्रह्माजीने देवराज इन्द्रसे दीर्घकालतक ब्रह्मचर्यका पालन करानेके बाद ही उसे ब्रह्मविद्याके उपदेशका अधिकारी समझा था। भगवान्ने गीतामें कहा है—

**'यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति'**

( ८ । ११ )

'परमात्माकी प्राप्तिके इच्छुक ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं,'

अतएव यदि हमें भगवत्प्राप्तिकी अभिलाषा है तो मन लगाकर स्वयं ब्रह्मचर्यका सेवन करना और अपनी सन्तानोंसे करवाना चाहिये, जिससे आगे चलकर वे भगवत्प्राप्तिके अधिकारी बन सकें। जो लोग ऐसा नहीं करते वे अपने ही पैरोंपर आप कुल्हाड़ी मार रहे हैं।

## वीर्यनाश और उससे हानि

वीर्यका नाश मैथुनसे होता है। हमारे शास्त्रोंमें आठ प्रकारके मैथुन बतलाये गये हैं और उनसे बचनेको ही ब्रह्मचर्य कहा है—

स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।
सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च॥
एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः।
विपरीतं ब्रह्मचर्यमनुष्ठेयं मुमुक्षुभिः॥

(१) किसी स्त्रीका किसी अवस्थामें स्मरण करना, (२) उसके रूप-गुणोंका वर्णन करना, स्त्री-सम्बन्धी चर्चा करना या गीत गाना, शृङ्गाररसके ग्रन्थोंको पढ़ना आदि, (३) स्त्रियोंके साथ ताश, चौपड़ आदि खेलना*, (४) स्त्रीको बुरी दृष्टिसे देखना, (५) स्त्रीसे एकान्तमें बातें करना, (६) स्त्रीको प्राप्त करनेके लिये मनमें संकल्प करना, (७) स्त्रीकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करना और (८) प्रत्यक्ष सहवास करना—ये आठ प्रकारके मैथुन विद्वानोंने बतलाये हैं। मोक्षकी कामनावालोंको इन आठोंसे अवश्य बचना चाहिये।

---

* बहुत-से लोग होलीके अवसरपर भौजाई, साली, सालेकी स्त्री, मित्र-पत्नी या पड़ोसिनोंके साथ फाग खेला करते हैं, इसको भी एक प्रकारका मैथुन समझना चाहिये। सब स्त्री-पुरुषोंको इस पापाचारसे अवश्य बचना चाहिये।

पर-स्त्रीके साथ तो मैथुन करना सर्वथा निषिद्ध है ही, परन्तु अपनी स्त्रीके साथ भी इन आठ प्रकारके मैथुनोंसे मुमुक्षुओंको बचना चाहिये। स्त्रीके किसी प्रकारके सम्बन्धसे ही वीर्यनाश होता है। प्रत्यक्ष सहवासके अतिरिक्त अन्य प्रकारके मैथुनोंमें वीर्य स्खलित होकर अण्डकोषोंमें आ ठहरता है, जिनसे धातुदौर्बल्य, स्वप्नविकार, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, यक्ष्मा आदि अनेक प्रकारकी बीमारियाँ हो जाती हैं। आजकलकी सभ्यतामें तो मैथुनके और भी अनेक अनैसर्गिक उपायोंका आविष्कार हुआ है, जिनसे प्रत्यक्ष सहवासके सदृश ही भीषणताके साथ वीर्यनाश होता है और यह पापाचार उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। फल भी हाथोंहाथ मिल रहा है। मन और शरीर दुर्बल हो जाता है, गाल पिचक जाते हैं, चेहरा पीला पड़ जाता है, स्मरणशक्ति चली जाती है, मस्तकमें चक्कर आते हैं, हृदय कमजोर हो जाता है, आँखें जलने लगती हैं, क्षुधा मारी जाती है, जी घबड़ाता है, सुखसे नींद नहीं आती और आलस्य घेरे रहता है, सारांश यह कि जीवन क्लेशोंका समुद्र बन जाता है। आयुर्वेदशास्त्रमें अर्श, पाण्डु, रक्तपित्त, राजयक्ष्मा, कास-स्वरभेद, मूर्च्छा, दाह, अग्निमान्द्य और वात आदि रोगोंका कारण वीर्यका अधिक नाश होना ही बतलाया है। पाश्चात्त्य डाक्टरोंका भी यही मत है। ऐसी अवस्थामें मनन-ध्यान तो हो ही कैसे सकते हैं? अतएव प्रत्येक सुखके इच्छुक मनुष्यको चाहिये कि वह स्वयं ब्रह्म-चर्यका पालन करे और अपनी सन्ततिसे करवावे। माता-पिताका कर्तव्य है कि वे गर्भाधानकालसे ही बड़ी सावधानीके साथ बालकके भावी जीवनको ब्रह्मचर्यके प्रतापसे सुखमय बनानेका उपाय करें।

जब गर्भमें बालक हो तब माता-पिता कभी किसी प्रकारकी गंदी बातें न करें, बुरे उपन्यास-नाटक न पढ़ें। न बुरे नाटक-सिनेमा देखें, शृङ्गारके तथा अश्लील चित्र न देखें, धर्मशास्त्रका अध्ययन करें, भक्त और धार्मिक वीरोंकी गाथाएँ सुनें और पढ़ें। गर्भकालमें माताकी जैसी चेष्टा होती है वैसी ही उनकी सन्तान बनती है। इस बातको प्राच्य और पाश्चात्य सभी विज्ञानवेत्ताओंने स्वीकार किया है। वीर नवयुवक अभिमन्युने चक्रव्यूहका वेध करना सुभद्राजीके गर्भमें ही सीखा था, भक्तराज प्रह्लादपर भक्तिका प्रभाव गर्भकालमें ही पड़ गया था और भी अनेक उदाहरण हैं। बच्चा पैदा होनेके बाद माता-पिता उसे अबोध समझकर कभी उसके सामने गंदी बातें और गंदी चेष्टा न करें, सगाई-विवाह आदिकी चर्चा-तक न चलावें, विद्याभ्यासके योग्य होनेपर उसे ऐसे सदाचारी सद्गुरुके समीप भेजें, जहाँ ब्रह्मचर्यकी और धर्मकी शिक्षाका विशेषरूपसे प्रबन्ध हो। आजकलके स्कूल-कालेजोंकी तो बड़ी ही बुरी दशा है। सौभाग्यवश शायद ही कोई ऐसा स्कूल या कालेज होगा जहाँ बालक दुराचरण न करते हों। बड़े ही खेदका विषय है कि भारतके भावी आशास्थल, भारत-जननीके प्रिय बालकोंकी जीवनशक्ति शिक्षाके नामपर बुरी तरहसे नष्ट हो रही है। प्रथम तो पाश्चात्य शिक्षाका विषैला रोग ही बालकको अपने धर्मसे गिरा देता है, दूसरे आजकलके स्कूल-कालेजोंका विषयप्रधान बिगड़ा हुआ वातावरण उनके जीवनकी प्रायः समस्त शक्तिको बिगाड़ देता है। हमारी जातिके जीवनमें यह एक बड़ा भारी घुन लग गया है। यदि इससे रक्षा न हुई तो बड़ा अनर्थ हो जानेकी आशङ्का है। मनीषियोंको शीघ्र ही सचेत होना चाहिये।

कहाँ तो सब प्रकारसे इन्द्रियसंयम कर ब्रह्मप्राप्तिके लिये अरण्यवासी, त्यागी गुरुकी झोंपड़ीमें रहकर सब प्रकारकी सत्-शिक्षाओंके प्राप्त करनेका स्तुत्य आदर्श और कहाँ आज बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओंमें प्राय: असंयमी भाड़ेके शिक्षकोंद्वारा विषय-प्रसविनी, जड़वादमें लगा देनेवाली शुष्क अविद्यारूपी विद्याका शिक्षण। जरा प्राचीन गुरुकुलोंमें जाकर रहनेवाले ब्रह्मचारी विद्यार्थियोंके पवित्र जीवनको देखिये। विद्याभ्यासके योग्य होते ही बालक उपनयनसंस्कारसे संस्कृत होकर माता-पिता और घर-बारको त्यागकर अकेला समित्पाणि होकर त्यागी और विद्वान् वनवासी गुरुके गृहमें जाता है और गुरुको परमात्मा समझकर उसकी सब प्रकारसे सेवा करता हुआ ब्रह्मचर्य-आश्रमके कठिन नियमोंका पालन करता हुआ, श्रद्धा और भक्तिके साथ सद्विद्याका अध्ययन करता है। ब्रह्मचारीके लिये नियम हैं—

सेवेतेमांस्तु नियमान् ब्रह्मचारी गुरौ वसन्।
सन्नियम्येन्द्रियग्रामं तपोवृद्ध्यर्थमात्मनः॥
नित्यं स्नात्वा शुचिः कुर्याद् देवर्षिपितृतर्पणम्।
देवताभ्यर्चनं चैव समिदाधानमेव च॥
वर्जयेन्मधु मांसं च गन्धं माल्यं रसान् स्त्रियः।
शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनां चैव हिंसनम्॥
अभ्यङ्गमञ्जनं चाक्ष्णोरुपानच्छत्रधारणम्।
कामं क्रोधं च लोभं च नर्तनं गीतवादनम्॥
द्यूतं च जनवादं च परिवादं तथानृतम्।
स्त्रीणां च प्रेक्षणालम्भमुपघातं परस्य च॥
एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत्क्वचित्।
कामाद्धि स्कन्दयन्रेतो हिनस्ति व्रतमात्मनः॥

स्वप्ने सिक्त्वा ब्रह्मचारी द्विजः शुक्रमकामतः।
स्नात्वार्कमर्चयित्वा त्रिः पुनर्मामित्यृचं जपेत् ॥
( मनुस्मृति २ । १७५-१८१ )

'ब्रह्मचारी गुरुके घरमें रहकर अपने तपकी वृद्धिके लिये समस्त इन्द्रियोंको वशमें रखकर इन नियमोंका पालन करे। नित्य नहाकर शुद्ध होकर देव, ऋषि और पितरोंका तर्पण करे, देवताओंका यथाविधि पूजन करे, वनमेंसे यज्ञके लिये लकड़ियाँ लाकर हवन करे। शहद, मांस, चन्दन, इत्र आदि पदार्थ, फूल, मालाएँ, रस, स्त्रियाँ और सब प्रकारके आसवोंका तथा प्राणियोंकी हिंसाका सर्वथा त्याग करे। शरीरमें तेल न लगावे, आँखोंमें सुरमा न डाले, जूते न पहने, छत्ता न रक्खे; काम, क्रोध, लोभको त्याग दे, नृत्य न करे, गीत न गावे, बाजा न बजावे, जूआ न खेले, परचर्चा न करे, निन्दा न करे, झूठ न बोले, स्त्रीको न देखे, न स्पर्श करे, पराई बुराई न करे, सर्वत्र अकेला सोवे, वीर्यपात कभी न करे। जो विद्यार्थी कामनासे वीर्यपात करता है, वह अपने ब्रह्मचर्यव्रतका नाश करता है। बिना इच्छाके यदि स्वप्नमें वीर्यपात हो जाय तो सबेरे नहाकर सूर्य भगवान्‌का पूजन करे और 'पुनर्मामेत्विन्द्रिय'की ऋचाका तीन बार जप करे।' यह थी ब्रह्मचारीकी जीवनचर्या। राजकुमार और दरिद्र भिखारीके बालकमें कोई भेद नहीं था। भगवान् कृष्ण और दरिद्र सुदामाके एक साथ सान्दीपनिके घरमें रहकर विद्याध्ययन करनेकी कथा प्रसिद्ध है। अब इसके साथ वर्तमान कालके छात्रोंकी तुलना कीजिये। कहाँ तो इन्द्रियसंयमी, विनम्र, गुरुसेवक, त्यागी, विलासशून्य, पवित्रकायमन, धर्मज्ञाननिपुण, ईश्वरभक्त, दण्डमेखला-

धारी, सीधा-सादा ब्रह्मचारी और कहाँ इन्द्रियलोलुप, उद्दण्ड, प्रोफेसरोंकी दिल्लगी उड़ानेवाला विषयी, शौकीन, अपवित्र शरीर-मनवाला, धर्मद्रोही, ईश्वरनिन्दक, बूट-शूट-रिष्टवाच-चश्मा और चमड़ेकी बेग धारण करनेवाला, अभिमानी, कालेजका अप-टू-डेट फैसनेबल छात्र !* कितना भयानक परिवर्तन है । स्वर्ग आज नरकार्णव बन गया है । ऋषिसेवित, वेद-ध्वनिपुनीत, यज्ञशाला-मण्डित पवित्र भारतभूमिमें आज सभ्यता और शिक्षाके नामपर मर्यादाशून्य विलास-वासनाका ताण्डवनृत्य हो रहा है । प्राचीन धर्मप्राण आर्यजाति आज इस धर्मशून्य जडवादकी बाहरी चमक-दमकसे चमत्कृत और आत्मविस्मृत होकर आपात-रमणीय विषपूर्ण विषयोंका सेवन कर जर्जरित और मृतप्राय हो रही है । यदि इस जातिमें जीवनकी ज्योतिको पुनः प्रज्वलित करना है तो प्राचीन पावन आदर्शको सामने रखकर वर्तमान आवश्यकताओंकी मर्यादित पूर्तिके साधनोंसहित धर्ममूलक ब्रह्मचर्यप्रधान गुरुकुलोंकी स्थापना करनी चाहिये । त्यागी, सदाचारी, विद्वान्, परसेवापरायण, सच्चे ब्राह्मणोंको तैयार होना चाहिये । प्राचीन प्रणालीके अनुसार निःस्वार्थ-भावसे सर्वभूतस्थित ईश्वरकी सेवा करनेके लिये और पवित्र, गङ्गा-यमुना-सेवित, प्राकृतिक सौन्दर्यसम्पन्न, निर्जन स्थानोंमें रहकर सुन्दर आश्रमोंकी स्थापनाके लिये सब लोगोंको चाहिये कि यदि सम्भव हो तो ऐसे निःस्वार्थी सदाचारी गुरुओंकी सेवामें अपने-अपने

* इस कथनका यह तात्पर्य नहीं है कि आजकल सभी विद्यार्थी इस प्रकारके हैं । प्राचीन स्थितिके साथ वर्तमान स्थितिकी तुलना करते हुए साधारण दृष्टिसे ऐसा लिखा गया है । कोई सज्जन इसको बुरा न मानें ।

बालकोंको मोह और अभिमानको छोड़कर भेजें । यदि देशमें ऐसे दो-चार भी आदर्श गुरुकुलोंकी स्थापना हो जाय तो आगे चलकर बड़ा लाभ हो सकता है । आवश्यकता है त्यागी, विद्वान् और सदाचारी सत्पुरुषोंकी जो इस महान् कार्यके अधिकारी हैं । यदि इस बातका शीघ्र कोई प्रबन्ध नहीं हुआ और सब ओरसे वीर्यनाशका कुकृत्य यों ही जारी रहा तो न मालूम इस देशकी और कैसी दुर्दशा होगी ! यह सदा स्मरण रखना चाहिये कि वीर्यनाशसे ही सर्वनाश होता है । कुछ विद्वानोंका कथन है कि यदि वीर अभिमन्यु और भक्त सुधन्वा युद्धक्षेत्रमें जाते समय वीर्यपात न करते तो उस समय उनकी मृत्यु न होती । अतएव सबको सावधानीके साथ वीर्यरक्षा करनी चाहिये । भगवान् सबको सुबुद्धि दें ।

## बाल-विवाह

आजकल बालकोंके माता-पिता या अभिभावकोंकी ओरसे एक बड़ी भूल और हो रही है, वह है छोटी उम्रमें अपने बालक-बालिकाओंका विवाह कर उन्हें ब्रह्मचर्यके पवित्र पथसे गिरा देना ।

हिंदू-धर्मशास्त्रके अनुसार विवाह निरा खिलवाड़ या केवल इन्द्रिय-लालसा चरितार्थ करनेका साधन नहीं है । विवाह एक पवित्र और आवश्यक संस्कार है । विवाह गृहस्थाश्रमकी बुनियाद है और गृहस्थाश्रमका उद्देश्य है स्त्री-पुरुष दोनोंकी एकता सम्पादन कर पवित्र प्रेमसे एक सूत्रमें बँधकर धर्माचरणमें प्रवृत्त होना और यथासाध्य तीनों आश्रमवासियोंकी सेवा करके भगवत्प्राप्तिके लिये प्रस्तुत होना । गृहस्थाश्रम तभी सिद्ध होता है जब कि दम्पति काम, क्रोध, लोभसे बचे रहकर ईश्वर-

भावसे जगत्की सेवा कर और शास्त्रके मर्यादानुसार यथावश्यक समस्त व्यवहार कर देवर्षि-पितृ-ऋणसे मुक्त होते हैं। शास्त्र कहता है—

**'पुत्रार्थे क्रियते भार्या'**

'भार्या पुत्रोत्पादनके लिये करनी चाहिये न कि विलास-वासनाके लिये। स्त्री सहधर्मिणी है, विलासकी सामग्री नहीं। विवाह किया जाता है संयमके लिये, न कि उच्छृङ्खलताको आश्रय देनेके लिये। आज हम इस परम सत्यको भूल गये हैं, इसीलिये तो स्वर्गके नन्दनकाननके सदृश हमारा सुखमय गृहस्थ आज नरकपुरी बन रहा है। विवाहका दायित्व और उसका असली उद्देश्य हम भूल गये हैं। विवाहकी धार्मिकताको छोड़कर आज हमने उसे केवल इन्द्रिय-सुख-साधनका ही द्वार बना लिया है। शास्त्र कहता है कि चौबीस वर्षपर्यन्त गुरुगृहमें निवास करनेके उपरान्त जब युवक विद्याबलसम्पन्न होता है, जब वह अपनी जीविका स्वयं निर्वाह करने योग्य होता है तब उसे गृहस्थाश्रमके पवित्र द्वारमें प्रवेश करनेका अधिकार प्राप्त होता है। आज हम इस महत्त्वपूर्ण व्यवस्थाको भुलाकर अबोध बालक-बालिकाओंका गुड्डे-गुड्डियोंका-सा विवाह कर उनके भावी जीवनको नष्ट कर डालते हैं। जिन बच्चोंको धोती पहननेका शऊर नहीं उन्हें हम गृहस्थाश्रमके कठिन बन्धनमें बाँधते हैं। वे बेचारे अबोध बालक इसका मर्म क्या जानें! उन्हें क्या पता कि विवाहमें पति-पत्नी आपसमें क्या प्रतिज्ञा करते हैं? बालक केवल विवाहको एक आमोद मानकर खुशीमें फूले फिरते हैं, परन्तु जो बुद्धिमान् लोग ऐसे विवाहोंका परिणाम जानते हैं, उन्हें अबोध बालकोंके इस आमोद-प्रमोदपूर्ण विनोदपर रुलाई आती है। हमारे

युवकोंकी अवस्था तो देखिये ! जवानी आनेके पहले ही बुढ़ापा आ गया है । यही स्थिति स्त्रियोंकी है, शायद ही कोई ऐसी युवती हो जो प्रदर या रजोविकारके रोगसे पीड़िता न हो ! युवक और युवतियों-की मृत्यु-संख्या देखकर तो कलेजा काँपता है ! कलियाँ खिलनेके पहले ही मुर्झा जाती हैं । इससे अधिक गृहस्थकी दुर्दशा और क्या होगी ? इसमें कोई सन्देह नहीं कि माता-पिताको अपने बालक बड़े प्यारे होते हैं, वे जान-बूझकर उनका अनिष्ट नहीं करते परन्तु उनकी बुद्धिमें अज्ञान छाया हुआ है, इसीलिये वे इस प्रकारकी भूलें करते हैं । ब्रह्मचर्यके महत्त्वको भूल जाना ही इस भूलका प्रधान कारण है, परन्तु यह भूल सर्वथा अक्षम्य होती है, प्रकृति हाथोंहाथ फल दे देती है । अतएव माता-पिता और अभिभावकोंको चाहिये कि वे अपनी सन्तानका विवाह वयसे पूर्व कदापि न करें । वर्तमान परिस्थिति-को देखते हुए विवाहके योग्य वर-कन्याकी आयु अन्ततः पूर्ण अठारह और बारह वर्ष नियत की जा सकती है । मर्यादामें रहते हुए आवश्यकता और योग्यतानुसार इसकी अवधि और भी बढ़ायी जाय तो उत्तम है । धर्मशास्त्रोंके आज्ञानुसार कन्याका विवाह रजोदर्शनसे पूर्व ही होना चाहिये । यद्यपि मनु महाराजने योग्य वरके अभावमें रजोदर्शनके बाद तीन वर्षतक और भी प्रतीक्षा करनेकी आज्ञा दी है और यहाँतक कहा है कि कन्या आजन्म कुँवारी रह जाय तो कोई आपत्ति नहीं, परन्तु अयोग्य वरके साथ उसका विवाह न करना चाहिये, परन्तु यह व्यवस्था योग्य वरके अभावमें है । जो लोग अपनी कन्याका किसी लोभ या प्रमादवश कन्यासे छोटी उम्रके वरके साथ या वृद्धके साथ विवाह कर देते हैं वे बड़ा पाप करते हैं । धर्मशास्त्रका वाक्य है—

कन्यां यच्छति वृद्धाय नीचाय धनलिप्सया।
कुरूपाय कुशीलाय स प्रेतो जायते नरः॥

'जो मनुष्य धनके लोभसे अपनी कन्याको किसी वृद्ध, नीच, कुरूप ( अङ्गहीन ) और दुराचारी-दुर्गुणीको ब्याह देता है, वह मरनेके बाद प्रेत होता है।' योग्य वरके मिलनेपर रजोदर्शनके समय विवाह कर देना आवश्यक है। परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि रजोदर्शन सभी जगह छोटी उम्रमें नहीं होता। यदि माता-पिता या अभिभावक विशेष ध्यान रक्खें तो बालिकाएँ छोटी उम्रमें रजस्वला न हों। यदि लड़कियोंके सामने सगाई-विवाहकी बात ही न की जाय; मेहनत करवायी जाय, स्त्री-पुरुषोंकी कामचेष्टा देखनेका उन्हें अवसर न मिले; उत्तेजक पदार्थ खानेको न दिये जायँ; बुरी कहानियाँ सुनने और बुरी पुस्तकें पढ़नेको न मिलें; भड़कीले कपड़े और गहने भूलकर भी न पहनाये जायँ; सजावट और शृङ्गारकी भावना उत्पन्न न होने दी जाय; पुरुषोंमें अधिक आना-जाना न हो; जिस स्कूलमें लड़के पढ़ते हों उसमें पढ़नेको न भेजी जायँ और सुन्दरताका गर्व न आने दिया जाय तो सम्भव है कि कन्याएँ छोटी उम्रमें रजस्वला न हों। बहुधा धनियोंकी कन्याएँ शीघ्र रजस्वला होती हैं। इसका कारण यही है कि उन्हें चटकीले कपड़े और गहने पहननेको मिलते हैं, काम-काज करवाया नहीं जाता, नौकर-नौकरानियोंकी बुरी सङ्गति रहती है, उत्तेजक चीजें खानेको मिलती हैं। इसके सिवा शहरोंकी अपेक्षा गाँवोंमें कन्याएँ देरसे रजस्वला होती हैं, सभ्यताका अभिमान रखनेवाली जातियोंकी अपेक्षा ग्रामीण जातियोंमें भी कन्याएँ जल्दी रजस्वला नहीं होतीं।

जो बालक या बालिकाएँ भगवत्प्राप्तिके उद्देश्यसे आजीवन अथवा यथासाध्य अधिक कालतक ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहें उन्हें स्वतन्त्रतासे करने देना चाहिये । परन्तु यह स्मरण रहे कि कहीं कुसङ्गतिसे उनका जीवन बीचमें ही बिगड़ न जाय । क्योंकि यह बड़ा ही टेढ़ा प्रश्न है !

## गृहस्थमें ब्रह्मचर्य

कुछ लोगोंकी समझ है कि विवाहिता पत्नीके साथ चाहे जैसा व्यवहार किया जाय सब धर्मसंगत है । वे समझते हैं कि इसके लिये तो उन्हें परमात्माके घरसे छूट मिल गयी है परन्तु यह उनका भ्रम है । वास्तवमें कोई किसीकी स्त्री या पुरुष नहीं, अपने-अपने कर्मवश उस जगन्नियन्ताकी इस जगद्रूपी नाटयशालामें पार्ट करनेके लिये जीव कभी स्त्री-पुरुषके रूपमें तो कभी माता-पुत्रके वेषमें आते हैं और यहाँका खेल समाप्त होते ही कर्मफलके अनुसार वह नटराज जिस स्थानपर जैसा नाच नाचनेके लिये उन्हें प्रेरित करता है, वहीं दूसरे स्वाँगमें उन्हें फिर जाना पड़ता है । जहाँपर जैसा स्वाँग जिस सम्बन्धका मिला है, वहाँपर उसीके अनुसार खेल खेलना उचित है । हमें इस जीवनमें जिस स्त्रीके साथ दम्पतिरूपमें नियुक्त होना पड़ता है वह परमात्माके आज्ञानुसार और इच्छानुसार होता है । इसीलिये वह एक धर्मबन्धन है, कामवृत्तिको चरितार्थ करनेका साधन नहीं । परमात्माकी कृपा प्राप्त करनेका वास्तविक अधिकारी वही गृहस्थ होता है जो दम्पतिके इस धर्मसम्बन्धको समझकर इन्द्रियसंयमपूर्वक अपने जीवनके समस्त कार्य

( स्टेजपर पार्ट करते हुए ऐक्टरकी भाँति ) अपना कुछ भी न मानकर अनासक्तभावसे लाभ-हानिमें समचित्त होकर भगवदर्पणबुद्धिसे करता है। मनुष्य इस ज्ञानका अधिकारी है, इसीलिये तो वह अन्य योनियोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ माना जाता है। कामकी उत्तेजनासे पागल होना तो पशुधर्म है। परन्तु सच पूछा जाय तो इस समय हमारी दशा पशुओंसे भी गयी-बीती है। पशु अब भी बहुत-से नियमोंको पालते हैं, यदि मनुष्य हस्तक्षेप न करे तो अस्वस्थ अवस्थामें पशु कभी सहवास नहीं करते। बहुत-से पशु तो सालमें एक ही बार गर्भ धारण करते हैं। गर्भाधानके बाद स्त्री-पशु कामाभिलाषी पुरुष-पशुको कभी अपने पास नहीं आने देती। पशुओंका तो यह हाल है जो हमसे बलमें बहुत बढ़े हुए हैं; इधर हम इतने इन्द्रियदास हो रहे हैं कि पशुओंकी अपेक्षा बहुत कम बलधारी होनेपर भी पशुओंसे अधिक असंयमी होकर प्रकृतिके नियमोंको बुरी तरहसे कुचलते हैं! शास्त्रमें कहा गया है—

**ब्रह्मचर्यं समाप्याथ गृहधर्मं समाचरेत्।**
**ऋणत्रयविमुक्त्यर्थं धर्मेणोत्पादयेत्प्रजाम्॥**

'ब्रह्मचर्यके चौबीस वर्ष पूरे करनेके बाद युवावस्थामें गृहस्थधर्ममें प्रवेशकर, देव, ऋषि और पितृ-ऋणसे मुक्त होनेके लिये मनुष्य धर्मविधिसे सुप्रजा उत्पन्न करे।' वास्तवमें इस प्रकारका धर्मभीरु संयमी गृहस्थ ही ओजस्वी, तेजस्वी और बलवान् हो सकता है। विवाहके समयका एक मन्त्र है। वर कन्यासे कहता है—

'गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथा सः। भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः। अमोऽहमस्मि सा त्वꣳ सा त्वमस्यमो अहम्। सामाहमस्मि ऋक् त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वं तावेहि विवहावहै सह रेतो दधावहै प्रजां प्रजनयावहै पुत्रान् विन्दावहै बहूंस्ते सन्तु जरदष्टयः। सम्प्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳशृणुयाम शरदः शतम्।' (पार० कं० ६। ३)

'हे कल्याणि! मैं अपनी कान्ति, श्री, महिमा, ज्ञान और धर्मादिकी पूर्तिके लिये तुम्हें ग्रहण करता हूँ, तुम्हारी आत्मा मेरी आत्मासे कभी अलग न हो, हम दोनों एक ही साथ वृद्धावस्थाको प्राप्त हों। भग, अर्यमा और सवितादि देवताओंने तुमको मुझमें मिला दिया है, तुम घरके कार्योंको करोगी। कल्याणि! तुम्हारे द्वारा मेरी शान्ति, श्री और कान्ति आदिका विकास होगा, अतएव तुम लक्ष्मीके समान हो, तुम्हारे न होनेसे मेरी कान्ति, श्री आदि नहीं रह सकती। मैं अकेला लक्ष्मीशून्य हूँ। हे माङ्गल्ये! तुम्हें प्राप्तकर मैं लक्ष्मीवान् हो गया। हे आयुष्मति! मैं सामरूप हूँ तो तुम ऋक्‌रूपा हो। ऋक् और सामसे जैसा घनिष्ठ सम्बन्ध है, ऋक्‌के बिना जैसे सामकी पुष्टि और सत्ता नहीं रहती, इसी प्रकार तुम्हारे बिना भी मेरी और मेरी इन्द्रियोंकी पुष्टि और सत्ता नहीं रहती। हे अर्द्धाङ्गिनि! मैं आकाशरूप हूँ तो तुम पृथ्वीरूपा हो। पृथ्वी और आकाशमें जैसे ओतप्रोत सम्बन्ध है उसी प्रकार तुम्हारे साथ मेरा ओतप्रोत सम्बन्ध हुआ है। अतएव हे कल्याणि! तुम

आत्मसमर्पण करो, हमारा विवाहबन्धन सुदृढ़ हो, हम दोनोंको रेत:संयम करना पड़ेगा, फिर यथासमय देहसंयोगसे सुपुत्र उत्पादन करेंगे, उसका सुख देखेंगे। इस प्रकारकी विधिसे पुत्र उत्पादन करनेपर वे दीर्घजीवी होंगे। तुम्हारी और मेरी एकात्मता हो जानेपर हम दोनोंके तेजकी वृद्धि होगी, दोनोंका हृदय मिलकर समुन्नत होगा, सौ वर्ष जीवेंगे, सौ वर्ष देखेंगे और सौ वर्ष सुनेंगे।'

इससे पता लगता है कि उस समय सौ वर्षकी आयु होती थी, पर होती थी इस शर्तसे कि 'हम दोनोंको रेत:संयम करना पड़ेगा' रेत:संयम न होनेसे न तो सौ वर्षकी आयु होती है और न बलिष्ठ मेधावी सन्तान ही होती है। आज रेत:संयमके अभावसे हमारी और सन्तानोंकी क्या दशा है ? देह केवल हड्डियोंका ढाँचा रह गया है और मन धर्माधर्मके विवेकसे शून्य है, इसका कारण यही है कि आज हम 'सन्तानार्थं च मैथुनम्' इस शास्त्रोक्तिकी बुरी तरहसे अवहेलना कर रहे हैं! महर्षि याज्ञवल्क्य कहते हैं—

**ऋतावृतौ स्वदारेषु सङ्गतिर्या विधानतः।**
**ब्रह्मचर्यं तदेवोक्तं गृहस्थाश्रमवासिनाम्॥**

'ऋतुकालमें अपनी धर्मपत्नीसे शास्त्रके आदेशानुसार केवल सन्तानार्थ समागम करनेवाला पुरुष गृहस्थमें रहता हुआ भी ब्रह्मचारी है।' स्मरण रखना चाहिये, केवल ऋतुकालमें ही स्त्रीके साथ सहवास करनेका विधान है, चाहे जब अनर्गल-रूपसे नहीं! ऋतुकाल किसे कहते हैं, रजोदर्शनका चौथा दिन

ही ऋतुकाल नहीं है। यदि उस दिन कोई ग्रहण, रामनवमी, कृष्णाष्टमी आदि पर्व हों तो उस दिन स्त्री-संसर्ग निषिद्ध है। भगवान् मनु कहते हैं कि ऋतुकालमें अपनी विवाहिता पत्नीसे सहवास करना चाहिये। परन्तु 'पर्ववर्जम्' पर्व हो तो उस दिन नहीं। ऋतुकालके सम्बन्धमें मनु महाराज कहते हैं—

**ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडशस्मृताः।**
**चतुर्भिरितरैः सार्धमहोभिः सद्विगर्हितैः॥**
**तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी च या।**
**त्रयोदशी च शेषास्तु प्रशस्ता दश रात्रयः॥**

( ३ । ४६-४७ )

'सत्पुरुषोंद्वारा निन्दित रजोदर्शनके पहले चार दिनोंसहित सोलह रात्रियाँ स्त्रियोंका स्वाभाविक ऋतुकाल कहलाता है। इन सोलहमेंसे पहली चार रात्रियाँ तथा ग्यारहवीं और तेरहवीं रात्रि स्त्री-सहवासके लिये निन्दित है। बाकी दस रात्रियाँ उत्तम समझी जाती हैं।'

इन दस रात्रियोंमेंसे प्रतिपदा, षष्ठी, अष्टमी, एकादशी, द्वादशी, चतुर्दशी और पूर्णिमादि तिथियाँ तथा व्यतिपात, ग्रहण, रामनवमी, शिवरात्रि, जन्माष्टमी, श्राद्धदिवस, संक्रान्ति और रविवार आदि दिनोंको बाद देकर जो तिथियाँ उन दस तिथियोंमेंसे बचें उनमें संतानके हेतुसे या स्त्रीकी इच्छासे महीनेभरमें केवल दो बार जो स्त्री-सङ्गम करता है वह गृहस्थमें रहता हुआ भी ब्रह्मचारी माना गया है। मनु महाराज कहते हैं—

**निन्द्यास्वष्टासु चान्यासु स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन्।**
**ब्रह्मचार्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन्॥**

( ३ । ५० )

'पहली निन्दित छः रात्रियाँ तथा दूसरी और आठ रात्रियाँ कुल चौदह रात्रियोंको छोड़कर जो पुरुष ( महीनेमें ) केवल दो रात्रि स्त्रीके प्रति गमन करता है तो वह ब्रह्मचारी ही माना जाता है ।'

रजस्वलाके साथ कभी संसर्ग न करे, इससे अनेक प्रकारकी बीमारियाँ होती हैं । इसके सिवा आश्लेषा, मघा, मूल, कृत्तिका, ज्येष्ठा, रेवती, उत्तराभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी और उत्तराषाढा नक्षत्रोंमें भी स्त्री-सहवास निषिद्ध है । मन्दिरमें, रास्तेमें, श्मशानमें, औषधालयमें, ब्राह्मणके घरमें, गुरुके घरमें, सबेरे, सन्ध्याको, अपवित्र अवस्थामें, दवा लेनेके बाद, बिल्कुल भूखे, खानेके बाद तुरंत, मित्र और गुरुजनोंके बिछौनोंपर, मल-मूत्र-त्यागकी हाजतमें, दुखी मनसे, आवेगमें, क्रोधमें, व्यायाम करके थकावटमें, उपवासके दिन और दूसरे लोगोंके सामने कभी स्त्री-सहवास नहीं करना चाहिये । स्त्री-सहवासके सम्बन्धमें ग्रीसके महात्मा साक्रेटीजसे उनके एक शिष्यकी इस प्रकार बातें हुई थीं—

शिष्यने पूछा—मनुष्यको स्त्रीप्रसङ्ग कितनी बार करना चाहिये ?

साक्रेटीज—जीवनमें केवल एक बार ।

शिष्य—यदि इससे तृप्ति न हो तो ?

साक्रेटीज—तो वर्षमें एक बार कर सकता है ।

शिष्य—इतनेसे भी मन न माने तो ?

साक्रेटीज—महीनेमें एक बार करे ।

शिष्य—फिर भी न रहा जाय तो ?

साक्रेटीज–खैर, महीनेमें दो बार करे, परन्तु ऐसा करनेवालेकी मृत्यु जल्दी होगी !

शिष्य–यदि इतनेपर भी इच्छा बनी रहे तो ?

साक्रेटीज–पहले कफन मँगाकर घरमें रख ले; फिर चाहे जैसे किया करे !

उपर्युक्त प्रमाणोंसे यह सिद्ध हो गया कि स्त्री-सहवास जितना कम किया जाय उतना ही श्रेष्ठ है और उतना ही मनुष्यकी पारमार्थिक उन्नतिके लिये उपयोगी है ।

जो स्त्री-पुरुष अपनी इच्छासे सर्वथा ब्रह्मचारी होकर रहना चाहें उन्हें अवश्य ऐसा करना चाहिये । कुछ लोग कृत्रिम और अनैसर्गिक साधनोंसे सन्तानोत्पादन बंद करना चाहते हैं ऐसा करना पाप है । अधिक संतान न उत्पन्न करनेका सबसे सुन्दर और धर्मयुक्त उपाय दम्पतीका स्वेच्छासे ब्रह्मचर्यका नियम लेना है । इससे लोक-परलोक दोनों सुधर सकते हैं ।

अब संक्षेपमें सूत्ररूपसे ब्रह्मचर्यरक्षाके कुछ सामाजिक और व्यक्तिगत नियम बतलाये जाते हैं, जिनका मनन करना चाहिये और यथासाध्य उन्हें काममें लानेकी चेष्टा भी करनी चाहिये ।

## ब्रह्मचर्यरक्षाके उपाय

( १ ) बालविवाहका सर्वथा त्याग । कम-से-कम अठारह वर्षसे पहले लड़केका और बारह वर्षसे पहले लड़कीका विवाह भूलकर भी नहीं करना चाहिये ।

( २ ) वृद्ध विवाह कभी न होने देना चाहिये ।

( ३ ) ब्रह्मचर्याश्रमोंकी स्थापना करनी चाहिये । जिनमें बालकोंके

ब्रह्मचर्यकी रक्षाका बड़ा कड़ा प्रबन्ध होनेके साथ ही उन्हें धर्ममूलक ब्रह्मचर्यकी शिक्षा भी दी जाय। कम-से-कम अठारह सालकी उम्रतक बालकोंका उसमें रहना अनिवार्य हो।

( ४ ) लड़के-लड़कियोंकी सगाई बहुत पहले न की जाय।

( ५ ) बालक-बालिकाओंको भड़कीले कपड़े और गहने बिल्कुल ही न पहनाये जायँ।

( ६ ) शृङ्गार-रसके संस्कृत या हिन्दीके काव्य या नाटक-उपन्यासादि ग्रन्थोंका प्रचार यथासाध्य रोका जाय, कम-से-कम छोटी उम्रके बालक-बालिकाओंके हाथमें ऐसी पुस्तकें कभी न दी जायँ और न विद्यार्थियोंको साहित्यकी दृष्टिसे ही ऐसे ग्रन्थ पढ़ाये जायँ।

( ७ ) शृङ्गार-रसप्रधान नाटक-सिनेमा कभी न देखे जायँ, कम-से-कम बालक-बालिकाओंको कभी न दिखलाये जायँ।

( ८ ) उत्तेजक पदार्थ न खाये जायँ। मिर्च, राई, गरम मसाले, अचार, खटाई, अधिक मीठा और अधिक गरम चीजें न खायी जायँ। भोजन खूब चबाके किया जाय। भोजन सदा सादा, ताजा और नियमित समयपर किया जाय। मांस-मद्यका सर्वथा परित्याग कर दे, किसी भी मादक ( नशैली ) वस्तुका सेवन न किया जाय।

( ९ ) यथासाध्य नित्य खुली हवामें प्रतिदिन सबेरे और सन्ध्याको पैदल घूमा जाय।

(१०) रातको जल्दी सोया जाय और प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तमें या सूर्योदयसे कम-से-कम एक घंटे पहले अवश्य उठा जाय।

सोते समय पेशाब करके सोवें । स्त्री और पुरुष एक पलंग-पर या एक साथ कभी न सोवें । रातको भगवान्का चिन्तन करते हुए नींद लें और सबेरे जागते ही फिर भगवान्का चिन्तन करें ।

( ११ ) कुसंगति सर्वथा त्याग दी जाय । स्त्रीसम्बन्धी चर्चा कभी न की जाय । इस प्रकार स्त्री भी पुरुष-चिन्तनका त्याग करे ।

( १२ ) दम्पती ( विवाहित स्त्री-पुरुष ) को छोड़कर अकेलेमें दूसरे-दूसरे स्त्री-पुरुष कभी न बैठें और न एकान्तमें बातचीत करें ।

( १३ ) स्त्रियोंकी ओर कभी न देखे, यदि दृष्टि जाय तो तुरंत मातृभाव कर ले या परमात्मभाव कर ले । इसी प्रकार स्त्रियाँ भी पुरुषोंकी ओर न देखें, यदि दृष्टि जाय तो पिताभाव या परमात्मभाव कर लें ।

( १४ ) नित्य सत्सङ्ग किया जाय । सद्ग्रन्थोंका अध्ययन किया जाय । रामायण, महाभारत, उपनिषदादि ग्रन्थोंके सुन्दर-सुन्दर भागोंका नित्य स्वाध्याय हो । श्रीमद्भगवद्गीताका नित्य अर्थसहित पाठ किया जाय ।

( १५ ) शौकीनी सर्वथा त्याग दी जाय । यह स्मरण रखना चाहिये कि सजावट और श्रृङ्गारसे कामवासना जाग्रत् होती है । श्रृङ्गार वास्तवमें किया ही जाता है इसलिये कि मैं दूसरोंको सुन्दर दिखलायी दूँ । श्रृङ्गार करनेवाला स्वयं डूबता है और दूसरोंको डुबोता है ।

( १६ ) इत्र-फुलेल कभी न लगाया जाय, फैशनसे न रहे, चटक-मटक छोड़ दी जाय, बाल न रक्खे जायँ, बार-बार

दर्पणमें मुँह न देखा जाय, होठोंको लाल करनेके लिये, पान न खाया जाय, आसव आदिका सेवन न किया जाय, उत्तेजक ओषधियोंका सेवन न किया जाय।

( १७ ) मूत्र-त्याग और मल-त्यागके बाद इन्द्रियोंको शीतल जलसे धो डाले। मल-मूत्रकी हाजत न रोके।

( १८ ) यथासाध्य ठंढे जलसे नित्य स्नान किया करे।

( १९ ) नियमित व्यायाम करे, हो सके तो नित्य कुछ आसन और प्राणायामका अभ्यास भी किया करे।

( २० ) कौपीन या लंगोटा अवश्य रखा जाय।

( २१ ) भगवान्‌की मूर्तिका प्रेमपूर्वक दर्शन करे, सच्चे साधुओं और महापुरुषोंकी मन लगाकर सेवा करे।

( २२ ) प्रतिदिन नियमितरूपसे थोड़े समयतक परमात्माका ध्यान अवश्य करे।

( २३ ) किसी व्यभिचारीकी चर्चा न करे, न सुने और न ऐसे लोगोंके पास ही बैठे।

( २४ ) निरन्तर भगवन्नामका जप करे, श्वाससे कर सके तो बहुत ही उत्तम हो, कामवासना जाग्रत् हो तो रामायणका पाठ करे या नाम-जपकी धुन लगा दे। जोर-जोरसे कीर्तन करने लगे। काम-वासना नाम-जप और कीर्तनके सामने कभी नहीं ठहर सकती। यह कई बार अनुभव किया हुआ सिद्ध प्रयोग है।

( २५ ) जगत्‌में वैराग्यकी भावना करे, जगत्‌की अनित्यताका मनन करे।

( २६ ) स्त्रीके रूपमें पुरुष और पुरुषके रूपमें स्त्री एक दूसरेके शरीरमें दोष देखना सीखे। यह सोचे कि चमड़ेसे लपेटे हुए शरीरमें मांस, रक्त, कफ, विष्ठा, मूत्र, हड्डियाँ आदि सभी अपवित्र पदार्थ हैं। इस विचारसे परस्पर रमणीयताका बाध करे।

( २७ ) महीनेमें कम-से-कम दो एकादशीके ( सम्भव हो तो निर्जल) उपवास किये जायँ।

( २८ ) महापुरुषों और वीर ब्रह्मचारियोंके चरित्रोंका मनन करे।

( २९ ) यथासाध्य सबमें परमात्माकी भावना करे।

( ३० ) अपने चरम लक्ष्य भगवत्प्राप्तिको सदा ध्यानमें रक्खे।